वैदिक वांग्मय में योग की पावन पुण्य परम्परा

डॉ. अरुण कुमार साव
डॉ. सीमा चौहान
प्रज्ञा साव

सारांश:

वैदिक जीवन परम्परा में योग भारत वर्ष की सबसे प्राचीन एवं अमूल्य धरोहर है। आदि से आधुनिक के इस वैज्ञानिक युग तक योग मानवीय जीवन का अविछिन्न अंग रहा है। जिसकी छवि वैदिक वांग्मयों (ऋग्वेद ***XX.114.14, I.50.10, III.52.10,*** यजुर्वेद ***XI.1, XII.67,*** अथर्ववेद ***IV.14.4, XIX.71.1,*** सामवेद ***I.5.18.8*** आदि) में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। प्राचीन काल के ऋषि-मनीषियों द्वारा जो धर्म मानव जाति के उद्धार के लिए निश्चित हुआ वह योग ही है, साथ ही योग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति का प्रमुख साधन रहा है। समस्त ज्ञान-विज्ञान, योग की धुरि में ही समाहित है। व्यक्तित्व का सर्वांगिण विकास एवं शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार के शक्तियों का विकास योग द्वारा ही सम्भव है।

यह ध्रुव सत्य है कि यदि मानव धर्म में योग को सर्वथा पृथक कर दिया जाय तो मानव धर्म एक प्रकार से पंगु बनकर रह जाएगा। क्योंकि योग मानव धर्म के लिए एक चक्षु के समान है। यह एक जीवन दर्शन है। जीवन जीने की कला एवं विज्ञान है। जो सृष्टि और अतिसृष्टि के गुढ़तम रहस्यों को प्रत्यक्ष दर्शन कराती है।

कूट शब्दः- योग, वैदिक वांग्मय, व्यक्तित्व, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष।

---

*सहायक प्राध्यापक, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.) **Email: drarunsao@gmail.com**
** सहायक प्राध्यापक, योग विभाग, डी. एस. बी. कैंपस, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)
*** योग प्रशिक्षक, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.)

प्रस्तावना:

देवात्मा हिमालय की गहन उपत्तिकाओं में वैदिक ऋचाओं की गूँज के साथ ही योग की पावन पुण्य परम्परा का आरंभ हुआ। सभ्यता की पहली किरण के साथ ही मानवीय जीवन में योग का प्रकाश फैला। मननशील मानव ने अपने अस्तित्व की शुरूआत में ही यह अनुभव कर लिया था कि उसके जीवन में एक छोर पर यदि अनेकों सीमाएँ हैं, तो दूसरे छोर पर असीम और अनन्त सम्भावनाएँ भी हैं। जिन्हें स्वयं को परिशोधित कर, परमात्मा के विराट् अस्तित्व से

अपने को मिलाकर ही साकार किया जा सकता है। आत्म परिशोधन और विराट् पुरुष से मिलन की यह प्रक्रिया ही योग है। प्राचीन ऋषियों की अपूर्व अन्तर्दृष्टि, प्रतिभा एवं ज्ञान का मूल इसी में निहित रहा है।

योग मनुष्य की चेतना के विकास का विज्ञान है। इसमें पदार्थ, जीवन और चेतना का समन्वय होता है। यह विज्ञान एवं अध्यात्म का योग भी कराता है। उपनिषदीय परम्परा में योग चेतना की एक उच्च अवस्था है। इसमें पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा मन की वृत्तियाँ रूक जाती है और बुद्धि भी स्थिर हो जाती है। इस प्रकार इन्द्रिय नियंत्रण से ध्यान स्थिर हो जाता है। पतंजलि के योगसूत्र के अनुसार योग 'चित्तवृत्ति निरोध' की अवस्था है।[1]

यह विद्या सृष्टि के आदि काल से लेकर अब तक अविच्छिन्न एवं अबाध गति से संपूर्ण संसार को स्नत कराती चली आ रही है। ऋषि प्रणीत योग परम्परा एक उच्चस्तरीय विज्ञान है, जिसने दर्शन जैसे विराट् विषय को जन्म दिया। केवल यही नहीं श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराण, धर्म शास्त्र तथा ज्योतिष आदि विधाएँ भी इसी योग रूप कल्पतरू के ही अमृतमय अमर फल हैं। इसी अलौकिकता के कारण ही हमारे समस्त आर्ष वाड्मय में योग साधना की भूरी-भूरी प्रशंसा की गई है।

वेदां में योग:

योग की महत्ता एवं इसमें बतायी गयी प्रक्रियाओं का वर्णन श्रुति, स्मृति व पुराणों में पर्याप्त रूप से मिलता है। ऋग्वैदिक काल को भारतीय संस्कृति के साथ समस्त मानव जाति का उद्गम समय माना जाता है। इस विषय पर इतने शोध अध्ययन हो चुके हैं कि अब इस तथ्य को अनिवार्य रूप से सच मान लिया गया है। इस प्राचीनतम समय में ऋग्वैदिक संहिता का जो प्रणयन हुआ, उसमें भी योगाभ्यास सूचक मंत्र बहुलता से उपलब्ध होते हैं।

विश्व के सबसे प्राचीनतम आदि ग्रन्थ वेद में हमें सर्वप्रथम योग का संकेत मिलता है। ऋग्वेद में योग शब्द का प्राचीनतम अर्थ रथ के साथ बंधे जाने वाले पशुओं के बंध को योग कहा गया है।[2] ऋग्वेद में एक जगह उल्लेख मिलता है कि विद्वानों का यज्ञ कर्म बिना योग के सिद्ध नहीं होता है।[3] इस प्रकार ऋग्वेद में योगाभ्यास सूचक मंत्र बहुलता से उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद के ***X.114.4, I.50.10, III.52.10*** आदि मंत्रों का अवलोकन कर इस सच्चाई को जाना जा सकता है। इस प्रकार वैदिक काल से योग परम्परा आरंभ हो गई, जिसे 'योगमाया' नाम से व्यवहृत किया गया।[4] योग सिद्धि के लिए भगवान को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए ईश्वर प्रार्थना के क्रम में कहा गया है कि हर साधक लोग, हर कष्ट की स्थिति में परम ऐश्वरर्यवान इन्द्र का आह्वान करते हैं।[5] मन की प्रवृत्तियों को संयम रखना योग

के लिए प्रार्थना की गई है कि ईश्वर कृपा से हमें योग सिद्धि होकर विवेक ख्याति तथा ऋतम्भरा-प्रज्ञा प्राप्त हो और वही ईश्वर अणिमा-लघिमा आदि सिद्धियाँ हमारी तरफ लावें।[6]

योग द्वारा ज्ञान प्राप्ति के संदर्भ में यजुर्वेद[7] में उल्लेख मिलता है कि हम सभी लोग योग द्वारा समाहित चित्त से सर्वोत्पादक परमदेव परमेश्वर के उत्पादित जगत् अपनी शक्ति से उत्पन्न सुख लाभ के लिए उस परम ज्ञान को प्राप्त करें। इसी वेद में एक जगह योगाभ्यास का वर्णन मिलता है कि बुद्धिमान पुरूष जैसे हलों को जोतते हैं और बुद्धिमान पुरूष विद्वानों का सुख हो ऐसी बुद्धि से जुओं की जोड़ी विभिन्न देश में ले जाते हैं वैसे ही विद्वान योगीजन नाड़ियों में योगाभ्यास करते है। इन्द्रिय वृत्तियों में सुषुम्ना द्वारा सुखद धारण वृत्ति से प्राण-अपान आदि नाना जोड़ों द्वंद्वो का अलग-अलग विविध प्रकार से अभ्यास करते हैं।[8]

सामवेद[9] में योगी की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि वह परम ऐश्वर्य विभूति से संपन्न योगी अश्व के समान कार्य करने में सफल होता है जो पवित्र करने वाली धारण या ज्ञान धारा से निष्पन्न है। उसमें एक निष्ठ होकर चारों तरफ अपने ज्ञानोपदेश द्वारा विचरण करता है। योगी समाधिस्थ होकर संसार रूपी सागर में बिखरे हुए सिद्धि रत्नों को प्राप्त करने में समर्थ होता है। वेद वाक्य भी इन्द्र को जीवन साधक प्राणायाम के अभ्यासी बताता है ।[10]

अथर्ववेद में योग को मुक्ति प्राप्ति का साधन माना गया है। जिसकी छाप इन मंत्रों ***(XX.2.31-32, XX.8.83, V.26.7, V.27.12, IV.14.4)*** में दिखती है। वेदों की ही भांति ब्राह्मणों, आरण्यकों में भी योग संबद्ध वर्णनों की कमी नहीं है। ऐतरेय आरण्यक ***II.17, III.1, III.4, III.6,*** तैतिरीय आरण्यक ***II.2, II.7, II.9,*** शतपथ ब्राह्मण ***I.4.4.7, XIV.3.2.3,*** तैतिरीय ब्राह्मण ***III.10.8.6, I.2.6*** आदि स्थलों पर योग के गहन प्रक्रियाओं का सांकेतिक वर्णन मिलता है।

हालांकि वेदों में योग के पारिभाषिक शब्दावलियों की क्रमबद्धता गौण है तथापि उसके मंत्र वाक्यों, प्राकृतिक वस्तुओं तथा प्रतीकों के आधार पर योग का पूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। यह पूर्णतया योग के अस्तित्व को स्वीकारता है। ऋषि को योगी की संज्ञा दी जाती है एवं वैदिक मंत्र ऋषि हृदय का नाद। इन अर्थो में देखा जाए तो योग परम्परा का विकास वैदिक काल में दिखाई देता है जो कि ऋग्वैदिक काल से भी कहीं प्राचीन है। योग परम्परा के बीज अगर भारत के चिर प्राचीन प्राक्-ऐतिहासिक युग में न छिपे होते तो इनका प्रस्फूटन एवं पल्लवन प्रारंभिक वैदिक युग में देखने को न मिल पाता।

सिन्धु सभ्यता काल में योग:

पुरातत्त्व साक्ष्यों से भी योग की पुण्य परम्परा का प्राचीन होना सिद्ध होता है। मोहन जोदड़ों की खुदाई में मिली योगमुद्रावस्थित मूर्तियाँ इसका मुखर प्रमाण है। इतिहास वेत्ता जान मार्सल[11] ने सिंधु घाटी सभ्यता के पुरा अवशेषों में किन्हीं योग मूर्ति के मिलने की बात स्वीकारी है। उनके अनुसार इन मूर्तियों में विशेष मुद्रा पर त्रिशूल, मुकुट, विन्यास, नग्नता, कायोत्सर्ग मुद्रा, योगचर्या, बैल का चिन्ह आदि का समावेश है जिससे सिद्ध होता है कि वह किसी योगी की मूर्ति थी।

वी.एन.लुनियाँ के मतानुसार इस तरह के कुछ अन्य योग प्रतीक वहाँ पाए गए, जिनमें मुहरें, विभिन्न मुद्राएँ शामिल हैं। मुहरों का उल्लेख करते हुए लुनियां कहते हैं कि चीनी मिट्टी से बनी एक मुहर पर योगासीन व्यक्ति अंकित है। इसके दोनों ओर एक-एक नाग और सामने दो नाग बैठे हैं।[12] डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी की मान्यता है कि सिंधु घाटी सभ्यता में ध्यान तथा योग के अभ्यास करने वाले व्यक्तियों की सत्ता के पुरातात्विक प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी विवेचना पूर्णतया संभव है।

उपनिषदों में योग:

वेदों के मात्र प्रतीकात्मक एवं अत्यंत गोपनीय विषयों को उपनिषदों में बड़ी ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रायः देखा जाए तो सभी उपनिषदें योग विद्या की व्याख्या करती है। जिसमें आज तक के प्रचलित योग का सांगोपांग विवेचन है। जिसमें से ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैतरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक एवं श्वेताश्वेतर उपनिषद आधार स्तम्भ हैं।

उपनिषदों में प्राप्त योग शब्द आध्यात्मिकता की ओर संकेत करता है क्योंकि योग, ध्यान, तप आदि शब्द समाधि के ही अर्थ में प्रयुक्त होते है। श्वेताश्वेतर उपनिषद्[13] में योग एवं उनकी क्रियाओं तथा उनके परिणाम का विवेचन किया गया है। कहा गया है कि पंच महाभूतों का उत्थान होने पर और पंच योग संबंधी गुणों के सिद्ध हो जाने पर योग से तेजस्वी हुए देह को पा जाने वाला योगी रोग, जरा, मृत्यु से मुक्त हो जाता है। अमृतोपनिषद्[14] में षडंग योग की चर्चा हुई है। जिसमें प्राणायाम, ध्यान, धारणा, तर्क, समाधि के साथ प्रत्याहार की भी गणना की गई है।

ध्यानबिन्दु उपनिषद्[15] में चार प्रकार के आसन को (सिद्ध, भद्र, पद्म तथा सिंह) मुख्य माना गया है। इनके अलावा योगचुड़ामणि, नादबिन्दु, योगकुण्डल्युपनिषद् राजयोगोपनिषद्, कठोपनिषद्, योगतत्वोपनिषद,

योगशिखोपनिषद, आदि उपनिषदों में योग विद्या का विस्तृत विवेचन मिलता है जो योग परम्परा को स्पष्ट करता है। विकसित, स्वतंत्र औपनिषदिक परम्परा तत्पश्चात् सूत्रों, स्मृतियों, महाकाव्यों के रूप में प्रकट हुई।

स्मृतियों में योग:

सम्पूर्ण स्मृति शास्त्र आचार-विचार की, नीतियों की बहुमूल्य सम्पत्ति है। प्रारंभिक स्मृतियों में यम एवं नियमों की विस्तृत चर्चा मिलती है। मनुस्मृति[16] में उल्लेख मिलता है कि विद्वान व्यक्ति को सदैव यमों का पालन करना चाहिए जो व्यक्ति केवल नियमों का पालन करता है, यमों का नहीं, वह पाप करता है। मनुस्मृति में यम-नियम को गिनाया नहीं गया है किन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति[17] में दस यम तथा दस नियमों का उल्लेख मिलता है। जैसे-ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, दान, सत्य, अकुटिलता, अहिंसा, अचैर्य, मधुरता और इन्द्रिय दमन ये दस यम तथा स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, स्वाध्याय, इन्द्रिय निग्रह, गुरूसेवा, पवित्रता, आक्रोश और अप्रमाद ये दस नियम बताए गए हैं।

महाकाव्यों में योग:

रामायण और महाभारत भारत वर्ष के अति प्राचीन महान महाकाव्य हैं। रामायण में योग शब्द का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता परन्तु योग के समानार्थक शब्द तप का संकेत देते हैं। जिससे परम लक्ष्य की प्राप्ति संभव है। तपस्या से होने वाले आध्यात्मिक एवं अन्य उपलब्धियों को संक्षेप में कहे तो तप से मुनि लोग अग्नि के समान दैदीप्यमान और तेजयुक्त हो जाते थे। तप से ब्रह्म तत्व की प्राप्ति हो जाती थी।[18]

महाभारत में योग का अर्थ जीव ओर ब्रह्म का संयोग कहा गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में अन्य धर्म के अनुयायीयों को भी अहिंसा पालन करने को कहा गया है। मन के द्वारा इन्द्रियों को व ध्यान के द्वारा मन को नियंत्रित एवं अंततोगत्वा ध्यान द्वारा समाधि प्राप्ति की बात कही गई है।[19] योग की चर्चा करते हुए मन को सुदृढ़ बनाने, अपने इन्द्रियों की ओर से समेटने और मन पूर्व योगाभ्यास का आदेश दिया गया है[20] साथ ही चंचल इन्द्रियों को वशीभूत करने का आदेश देते हुए कहा गया है[21] कि वह इन्द्रियों को धीरे-धीरे अभ्यास के द्वारा विषयों से विमुख करके चित्त को ध्यान में लगायें।[22]

श्रीमद्भगवद् गीता में योग:

श्रीमद्भगवद् गीता ऐसा विश्वकोश है, जिसमें प्रत्येक शब्द से योग की वैज्ञानिकता सिद्ध होती है। इसमें संपूर्ण वेदों, उपनिषदों का सार-संग्रह भरा है। गीता योगाभ्यास को मुख्यतः स्वीकारती है। इसके प्रत्येक अध्याय अपने-आप

में एक पूर्ण योग है जिसको अपना कर हर व्यक्ति अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। इसमें मुख्यतः कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञान योग का विस्तृत वर्णन है। व्यवहारिक योग के लक्षण श्रीमद्भगवद् गीता में विभिन्न प्रकार से है जैसे-कर्म फल की इच्छा न होना[23], विषयों के प्रति आसक्ति का न होना, समत्व योग होना[24], निष्काम कर्म[25], सुख-दुःख एवं लाभ-हानि में समता का होना[26] आदि इस प्रकार गीता अपने विराट स्वरूप से योग की विशालता को प्रस्तावित करती है।

पातंजल योगदर्शन:

महर्षि पतंजलि का योग सूत्र अपने-आप में अनूठा एवं वर्तमान समय में योग का आधारभूत ग्रन्थ है जिसमें महर्षि पतंजलि सभी स्तर के साधकों के लिए परम तत्व की प्राप्ति का सरल-सुगम मार्ग को सुझाते है। जिसमें उच्च कोटि के साधकों के लिए अभ्यास एवं वैराग्य की[27], मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग (तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान)[28] तथा निम्नकोटि कोटि के साधकों के लिए अष्टांग योग[29] का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने योग साधना के पावन पुण्य परम्परा को जीवन्तता दी।

पुराणों में योग:

पुराणों में योग विषयक चर्चा विशद रूप से मिलती है। योगशास्त्र की दृष्टि से भागवत पुराण का स्थान औपनिषदिक तथा पातंजलि योग के बीच के काल में है। इसमें ज्ञानयोग, क्रियायोग तथा भक्तियोग का विशद वर्णन मिलता है।

शिवपुराण[30] व गरूड़ पुराण[31] सम्मिलित रूप से अष्टांग योग का वर्णन करते हैं। इसी काल (**650-1200** ई.) में विभिन्न ऐसी यौगिक ग्रन्थ की रचनाएँ की गई जो योग साधना की विशेषता एवं विश्वसनीयता का विहंगम अवलोकन कराते हैं। यथा वाचस्पति मिश्र ने 'तत्ववैशारदी' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया जो व्यास भाष्य पर टीका थी। विज्ञानभिक्षु ने 'योगवर्तिका' और 'योगसार संग्रह' के नाम से दो ग्रंथ लिखे। राघवानन्द ने 'पातंजल रहस्य' भोज ने 'राजमार्तण्ड' भावगणेश ने 'वृत्ति' रामनन्द पति ने 'मणिप्रभा' अनन्त पंडित ने 'योग चंन्द्रिका' तथा सदाशिव सरस्वती ने 'त्याग सुधाकर' नामक ग्रंथ का निर्माण किया। इस काल के ये योग संबंधी भाष्य, टीकाएँ योग साधना की निरंतरता को कायम बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आई हैं।

वैदिक गोमुख से प्रवाहित हुई योग की यह पुण्य परम्परा महाभारत, भागवत पुराण, विष्णु पुराण, ब्रह्म पुराण, याज्ञवल्क्य स्मृति एवं योग वशिष्ठ आदि ग्रन्थों में भी प्रवाहमान हुई है। नारदीय शिक्षा आदि शिक्षा ग्रन्थों में भी योगमूलक विषय वर्णित है। शब्द विद्या मर्मज्ञों का योग नेतृत्व तो जगत्प्रसिद्ध है ही। वैयाकरण शब्द ब्रह्मोपासक होते हैं। अत: उनका योगी होना असन्दिग्ध है। समस्त योग साधन एकमात्र अपौरुषेय वेदों पर ही आधारित है। शैवागम के अन्तर्गत तथा व्याकरण आगमों में भी वाग्योग अथवा शब्दयोग नामक योग प्रणाली का उल्लेख मिलता है। इस विद्या के गहन अध्येयता जानते हैं कि भर्तृहरि की 'वाक्यपदीय' की व्याख्या के अनुशीलन कर्ता वाग्योग से परिचित थे। व्याकृत शब्द की बैखरी दशा से मध्यमा पार करके पश्यन्ती दशा में आना इस योग का मुख्य उद्देश्य है। निरुक्त में भी यौगिक विषय स्पष्टत: स्वीकार किए गए हैं।

यह प्रमाणित सत्य है कि योग ही भारत देश की उर्वर भूमि चिर पुरातन संस्कृति है। तब से योग परम्परा निरंतर अबाध गति से प्रवाहित होती चली आ रही है और उत्तरोतर योग परम्परा के विविध रूपों का विकास होता गया और इसका महत्व बढ़ता रहा। इसका प्रमाण नास्तिक ग्रन्थों में भी पूर्णतया प्राप्त होता है।

बौद्धों में योग:

बौद्ध ग्रन्थों में योग का विशद् वर्णन उल्लेखनीय सत्य है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं योग में निर्देशित आसन, प्राणायाम आदि पूर्वक समाधि साधना की थी। जिनमें समाधि को उन्होंने निर्वाण के लिए सर्वोत्कृष्ट उपयोगी साधन माना। काम, क्रोध, भय, निद्रा एवं श्वास आदि का निरोध करके ध्यानावस्थित होना सांख्य-योग का साधन है। और भगवान् बुद्ध ने यही किया था। भगवान बुद्ध के चार आर्य सत्यों में योग वर्णित चार व्यूहों-बंधन का सत्य सामने आता है। बौद्ध धर्म में योग का तात्पर्य बोधि सत्व की प्राप्ति करना तथा जगत की निःसारता का ज्ञान प्राप्त करना है। इस धर्म में भी तत्व ज्ञान के लिए योग का प्रयोजन स्वीकार किया गया है। इन ग्रंथों में प्रयुक्त समाधि एवं ध्यान शब्द योग के अर्थ को व्यंजित करते हैं।[32] महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग के समान बौद्ध धर्म के मौलिक सिद्धांत धर्म प्रवर्तन सूत्र में अष्टांगिक मार्ग (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् वाक, सम्यक् संकल्प, सम्यक् आजीव, सम्यक् कर्म, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि) का वर्णन किया गया है।

जैनों में योग:

जैन धर्म में भी योग साधना की पुण्य परम्परा सम्मानित हुई है। यहाँ योग में निर्देशित पांच यम ही मुख्य साधन हैं। जिन्हें अणुव्रत कहा गया है। इतना ही नहीं कतिपय जैन ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर योग सूत्रों से शब्दश: साम्य है। यहाँ तक कि पातञ्जल योग में वर्णित अङ्क्षहसा से जैन सम्मत अङ्क्षहसा महाव्रत का स्वरूप बहुत अधिक मिलता है। जैन दर्शन में योग शब्द कई संदर्भो में प्रयुक्त हुआ है यथा संयम, निर्जरा, सँवर आदि। सूत्रकृतांग[33] में जौगौव शब्द संयम अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। स्थानांग सूत्र[34] में जोगवाही शब्द समाधि में स्थिर अनासक्त पुरूष के लिए प्रयुक्त हुआ है। आचारांग सूत्र[35] में साधुयोगी के लिए धूत-अवधूत शब्दों को प्रयोग मिलता है। भगवान महावीर स्वयं सिद्ध योगी थे। हरिभद्रसूरि कृत 'योगबिन्दु' तथा यशोविजय कृत 'अध्यात्म सार' में पातंजल योग का स्पष्ट उल्लेख है। जैन ग्रन्थ में सम्यक् चरित्र हेतु यम, नियम और ध्यान को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।

षड्दर्शनों में योग:

भारतीय षड्दर्शन में भी योग की पुण्य परम्परा को महत्वपूर्ण माना गया है। न्याय दर्शन[36] में कहा गया है कि अभ्यास से ही समाधिरत हो सकता है। इसके साथ ही अरण्य, गुहा एवं नदी के किनारे आदि स्थानों पर योगाभ्यास करने का निर्देश दिया गया है।[37] वैशेषिक दर्शन[38] के अनुसार योगियों को अपनी आत्मा में परमात्मा एवं मन (जीवात्मा) के संयोग से आत्म विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। तथा युक्त योगी जो समाधि को प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिए अतीन्द्रिय द्रव्यों का बिना समाधि के प्रत्यक्ष होता है।[39] सांख्य दर्शन[40] के अनुसार वृत्तियों के निरोध से ध्यान की सिद्धि होती है। योग सूत्र की भांति सांख्य सूत्र में भी सुखकारक आसन का वर्णन मिलता है।[41] सांख्य वृत्ति निरोध के उपाय के रूप में प्राणायाम की उपयोगिता को बताता है।[42] वेदान्त में भी किसी आसन में बैठकर ही साधन करने से चित्त में एकाग्रता की संभावना व्यक्त की गई है।[43] इसमें कहा गया है कि संसार सागर में डूबी हुई अपनी आत्मा का, आत्मदर्शन में मग्न रहता हुआ योगरूढ़ होकर स्वयं ही उद्धार करें।[44] मीमांसा दर्शन में कर्मकाण्ड का विशद वर्णन हुआ है। इस प्रकार सभी दर्शनों में योग का वर्णन प्रचुर मात्रा मिलता है।

वस्तुत: साधना चाहे किसी भी ढंग से की जाय, जब तक दैहिक आसक्ति से छुटकारा नहीं होता, मन समाहित नहीं हो पाता। और मन के समाहित हुए बिना शुद्धात्मतत्त्व का स्फुरण सम्भव नहीं है। जिस किसी भी प्रकार मन समाहित हो, वही अवस्था समाधि है, योग है। यही कारण है कि ईश्वर प्राप्ति हेतु जितने भी कर्म गीता में बतलाए गए हैं उन सभी को योग नाम से अभिहित किया गया है।

इस क्रम में सांख्य एवं योग की घनिष्ठता तो स्वत:सिद्ध है ही। इनमें तत्त्वज्ञान या ज्ञानकाण्ड को सांख्य एवं उसके व्यवहार पक्ष को योग कहा गया है। गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित हठयोग भी वस्तुत: राजयोग का साधन मात्र है- 'केवलं राजयोगाय हठयोगोऽपदिश्यते'। हठयोग के अतिरिक्त तंत्र साधना का केन्द्रीय तत्त्व योग ही है। हालाँकि इतना जरूर है कि तन्त्र में मुक्ति के स्वरूप में तथा कैवल्य के स्वरूप में थोड़ा भेद है। तान्त्रिक साधना के प्रवर्तक मुक्ति में शिव-शक्ति अथवा विष्णु-शक्ति आदि के नित्य मिलन एवं आनन्द रूपता को स्वीकार करते हैं। योग का स्वरूप कहीं भी किसी भी तरह वर्णित हो, परन्तु प्राय: ये सभी पातञ्जल योग से ही नि:सृत होते हैं।

वर्तमान युग में योग:

आधुनिक काल में योग साधना के इस पुण्य परम्परा को श्रीरामकृष्ण परमहंस एवं उनके शिष्य समुदाय में अग्रणी स्वामी विवेकानन्द ने विश्वधर्म सम्मेलन शिकागो (अमेरिका **1893**) से शुरू की। इसी परम्परा में श्री अरविन्द, महर्षि रमण, स्वामी दयानंद, स्वामी योगानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी चिन्मयानंद, स्वामी प्रभुपाद आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्ही देव मानवों ने इस प्रवाह को आगे बढ़ाया। बीसवीं सदी के मध्य पूर्व से सन् **1990** तक स्वामी कुवलयानन्द व महायोगी युग ऋषि पं. आचार्य श्रीराम शर्मा ने वैदिक युग से लेकर अब तक प्रचलित साधना पद्धतियों को अपने जीवन की प्रयोगशाला में दशकों की साधना से खरा प्रमाणित किया साथ ही उन्होंने उनकी युगानुकुल वैज्ञानिक व्याख्या भी की। अपने साधनामय जीवन के महाप्रयोग का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए उन्होंने बतलाया है कि - मानवीय जीवन के सभी प्रश्नों का सार्थक हल योग साधनाओं में निहित है। इतना ही नहीं इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों का सामना युग के अनिवार्यता को स्वीकार कर ही किया जा सकता है।

निष्कर्षः

योग की प्राचीनता काल की पुरातनता के सघन कुहासे से आच्छादित है, फिर भी हम इसके उद्भव को वेदों में खोज सकते हैं। वनों व अरण्यों की गोद में पली बढ़ी इसकी विकसित अवस्था को हम उपनिषदों में पाते हैं। यही योग जीवन की पूर्ण सक्रियता के बीच महाभारत की युद्ध भूमि में श्रीकृष्ण के मुख से गीता के रूप में मुखरित हुआ है। पतंजलि के योग सूत्र में यह अपना सुव्यवस्थित रूप पाता है, जो यम, नियम, बहिरंग योग (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) व अंतरंग योग (धारणा, ध्यान, समाधि) के रूप में क्रमबद्ध हैं। प्राचीन योग की ऐतिहासिक यात्रा क्रमश:

गौतम बुद्ध, शंकराचार्य के साथ आगे बढ़ती हुई इस युग में रामकृष्ण परमहंस तक आ पहुँची। भारत भूमि में विकसिक योग का विश्वव्यापी विकिरण सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द के विश्वविजयी तुमुल घोष के साथ हुआ।

योग का यह वास्तविक प्राचीन स्वरूप औपनिषदिक परम्परा का ही अंग है। तत्त्वज्ञान एवं तत्त्वानुभुति के साधन के रूप में ही यह विकसित हुआ। तत्त्व ज्ञान और तत्त्वनुभुति आदि उच्च भावों की प्राप्ति होने से शारीरिक एवं मानसिक विकास हेतु भी योग का प्रयोग हुआ है। आधुनिक काल में योग के कई प्रयोजन सुझाएं जाते हैं। उदाहरण के लिए, योग द्वारा सिद्धि प्राप्त करना, स्वास्थ्य संवर्द्धन, रोगों की चिकित्सा, चेतना का विकास आदि । वैसे कहना यही उचित है कि योग मुख्यतः तत्त्वानुभुति का विषय और वह आत्मिक विकास पर केन्द्रित है। इसी तरह जीवन में चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार में उत्कृष्टता का योग ही सच्चा योग माना जा सकता है । अतः योग मार्ग पर अग्रसर साधक को सदैव उस परमात्मा की अभीप्सा करते रहना चाहिए। यही सभी योगों का सार हैं।

संदर्भ सूचीः

1. योगश्चित्तवृत्ति निरोधः - पातंजल योगसूत्र 1/2
2. ऋग्वेद I.24.9
3. ऋग्वेद I.18.7
4. वैदिक योगसूत्र 22
5. ऋग्वेद I.30.7, सामवेद II.6.9
6. सामवेद XXX. 201.31, अथर्ववेद XX. 69.1, ऋग्वेद I.5.3
7. यजुर्वेद XI.2
8. यजुर्वेद XII.67
9. सामवेद I.5.18.3
10. सामवेद V.6.19.2
11. John Marsall (1931), Mohan Jodaro & the Ends Civilization. London.Vol-1, Pp 52-53.
12. लुनिया, वी. एन. (1987) - प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 64
13. श्वेताश्वेतर उपनिषद् II.12
14. अमृतोपनिषद 6
15. ध्यानबिन्दु उपनिषद् 43
16. मनुस्मृति IV.204
17. याज्ञवल्क्य स्मृति III. 312.13
18. वाल्मिकी रामायाण, बालकाण्ड 63.1
19. महाभारत के अनुशासन पर्व 117.38

20. महाभारत के अनुशासन पर्व **145**
21. महाभारत के शान्तिपर्व **195.11**
22. महाभारत के शान्तिपर्व **195.19**
23. श्रीमद्धगवद् गीता **II.47**
24. श्रीमद्धगवद् गीता **II.48, III.19**
25. श्रीमद्धगवद् गीता **IV.19**
26. श्रीमद्धगवद् गीता **II.38**
27. पातंजल योगसूत्र **I.12**
28. पातंजल योगसूत्र **II.1**
29. पातंजल योगसूत्र **II.29**
30. शिवपुराण **VII.2.37.14-15**
31. गरूड़ पुराण **I.229.13**
32. विशुद्धिमग्ग **III.1**
33. सूत्रकृतांग **I.2.1.11**
34. स्थानांग सूत्र **10**
35. आचारांग सूत्र **I.6.181**
36. न्याय दर्शन **IV.2.38**
37. न्याय दर्शन **IV.2.42**
38. वैशेषिक दर्शन **IX.1.11**
39. वैशेषिक दर्शन **IX.1.13**
40. सांख्य दर्शन **III.31**
41. सांख्य दर्शन **III.34**
42. सांख्य दर्शन **III.33**
43. ब्रह्मसूत्र **IV.1.7**
44. विवेक चूड़ामणी **1**